भावनात्मक साक्षरता

अजय शर्मा

इस प्रचलित सोच पर शायद ही किसी को संदेह होगा कि पढ़ने में होशियार बच्चे यकीनी तौर पर अपने भावी कैरियर में भी सफल होंगे। यानी उनका जीवन उज्ज्वल व सुख-समृद्धि से भरपूर होगा। देखा जाए तो यह सोच काफी तर्कसंगत लगता है कि स्कूल में मिले अंक या बुद्धि गुणांक (आई.क्यू. स्कोर) से बच्चे के भावी जीवन में सफल होने की सम्भावना की टोह ली जा सकती है। इसलिए स्कूलों को अक्सर ऐसे संस्थानों के रूप में देखा जाता है जो देश के भावी कामगारों के अकादमिक सामर्थ्य और बुद्धिमत्ता को तराश कर उसे और धारदार बना सकते हैं। लेकिन अगर आप किसी मनोवैज्ञानिक से इस बाबत बात करें तो मुमकिन है कि आप मनोविज्ञान के एक गूढ़ रहस्य से रूबरू हो जाएं। और वह यह कि शैक्षिक हुनर या आई. क्यू. स्कोर जीवन में सफल होने की एक बच्चे की सम्भावनाओं का संकेतक नहीं बन सकता है।

स्कूली प्रदर्शन और आई.क्यू. अंकों में झलकती आपकी शैक्षिक काबिलियत आपकी ज़िन्दगी को सुखी या सफल बनाने के लिए पर्याप्त नहीं। जीवन के हेरफेर में अन्य कारकों की भी महती भूमिका है। आम तौर पर हमें इस बात का इल्म ही नहीं होता कि यह मुद्दा कितना महत्वपूर्ण है।

आप अपने आसपास नज़र दौड़ाएं। आप पाएंगे कि समान पृष्ठभूमि के बावजूद लोगों के जीवन की गुणवत्ता समान नहीं होती है। कई सारे अध्ययन दर्शाते हैं कि लगभग समान शिक्षा व अवसर और एक जैसी क्षमता वाले लोगों की नियति में अन्तर होने की व्याख्या उनके स्कूल या कॉलेज के अकादमिक कौशलों के आधार पर नहीं की जा सकती है।

इस संदर्भ में हार्वर्ड विश्वविद्यालय के 95 छात्रों को लेकर एक अध्ययन हुआ। इसमें 1940 के दशक में वहां पढ़ रहे कुछ छात्रों के तब से लेकर 40-45 वर्ष की उम्र तक के उनके कैरियर के ग्राफ की निशानदेही की गई। नतीजे बताते हैं कि इम्तहानों में एकदम बढ़िया रिज़ल्ट पाने वाले लोग अपने कैरियर में उत्पादकता, तनख्वाह या उपलब्धियां हासिल करने के लिहाज़ से, उन सहपाठियों से बहुत बेहतर नहीं थे जिनके स्कूली नतीजे अच्छे नहीं हुआ करते थे। और शायद इससे भी ज़्यादा महत्वपूर्ण यह कि अपनी ज़िन्दगी से भी वे उतने संतुष्ट और खुश नहीं थे। एक अमरीकी शहर में 450 विद्यार्थियों पर एक शोध हुआ। इसमें उनके बुद्धि-गुणांक से भविष्य में उनके द्वारा चुने कैरियर और ज़िन्दगी के अन्य पहलुओं में उनके प्रदर्शन का कोई भी सम्बंध नहीं पाया गया। इस अध्ययन के अनुसार 80 से कम आई.क्यू. वाले 7 प्रतिशत लोग 10 या इससे अधिक सालों तक बेरोज़गार रहे; लेकिन 100 से अधिक आई.क्यू. वाले इतने ही प्रतिशत लोगों का भी यही हश्र हुआ। इस तरह के परिणामों तक पहुंचे अध्ययनों की संख्या अपार है।

तो हम इन तमाम अध्ययनों का निचोड़ क्या निकालें। सीधे-सादे शब्दों में कहें तो यह कि स्कूली प्रदर्शन और आई.क्यू. अंकों में झलकती आपकी शैक्षिक काबिलियत आपकी ज़िन्दगी को सुखी या सफल बनाने के लिए पर्याप्त नहीं। जीवन के हेरफेर में अन्य कारकों की भी महती भूमिका है। आम तौर पर हमें इस बात का इल्म ही नहीं होता कि यह मुद्दा कितना महत्वपूर्ण है।

हालांकि कुल मिलाकर एक बड़े समूह में आई.क्यू. और सामाजिक-आर्थिक स्थितियों में धनात्मक सहसम्बंध ज़रूर दिखता है, लेकिन शैक्षिक बुद्धि सफलता की कुंजी है - इस कहावत को ठेंगा दिखाते प्रकरणों की कमी नहीं है। सच तो यह है कि इस सिद्धांत के पक्ष में जाते मामलों की बजाए विरोध में बोलते किस्सों के स्वर कुछ

ज़्यादा ही मुखर हैं। आज अधिकांश मनोवैज्ञानिक और शिक्षक स्वीकारने लगे हैं कि हमारे जीवन को आकार देने में हमारे व्यक्तित्व की कई सारी दूसरी विशेषताओं का कहीं ज़्यादा हाथ होता है।

लेकिन ये विशेषताएं हैं क्या? इस दिशा में अग्रणी रहे हॉवर्ड गार्डनर के प्रारम्भिक कार्यों के आधार पर अध्ययनकर्ता इन विशेषताओं को आम तौर पर एक वृहत विषय 'भावनात्मक बुद्धि' के परचम तले रखते हैं। पहले इन विशेषताओं को हम व्यक्ति के गुण या व्यक्तित्व के रूप में पहचानते थे। लेकिन अगर हमें इसे एक परिभाषा देनी ही है तो हम मनोवैज्ञानिक पीटर स्लोवी से सहमत होते हुए भावनात्मक बुद्धि के तहत आने वाली कुशलताओं को निम्न चार क्षेत्रों में बांट सकते हैं:

1. **अपनी भावनाओं/संवेगों से वाकिफ होना:** भावनात्मक बुद्धि का सबसे मुख्य गुण है अपने स्व के बारे में जागरूक होना।
2. **अपने संवेगों पर काबू:** अपनी भावनाओं को बेहतर ढंग से नियंत्रित करने की काबिलियत।
3. **खुद के हौसले बनाए रखना:** पूर्व चिह्नित लक्ष्यों और उद्देश्यों की प्राप्ति की ओर अपनी क्षमताओं को रचनात्मक ढंग से झोंक देना।
4. **दूसरों की भावनाओं को समझना:** संवेदनशीलता एक प्रमुख अंतरवैयक्तिक गुण है।
5. **सम्बंधों को निभाना:** दूसरों के साथ उम्दा सम्बंध बनाए रखने का कौशल मुख्य रूप से दूसरों की संवेदनाओं और भावनाओं को समझने व उनका सम्मान करने की हमारी काबिलियत पर निर्भर करता है।

गणित या पढ़ने की तरह ही हम अपनी भावनात्मक ज़िन्दगी को भी कम या ज़्यादा विशेषज्ञता (पारखी नज़र) से नियंत्रित कर सकते हैं। इसके लिए भी कुछ विशिष्ट कौशल दरकार हैं। इन कौशलों में आप कितने पारंगत हैं इस पर निर्भर करेगा कि दो समान बुद्धिमत्ता वाले शख्सों में से कौन जीवन को भरपूर जिएगा और कौन भटकता रह जाएगा।

स्पष्टत: ये तमाम योग्यताएं दरअसल एक तरह की उच्च स्तरीय क्षमताएं हैं जो बुद्धिमत्ता समेत व्यक्ति में मौजूद दूसरी निपुणताओं, प्रतिभाओं और कौशलों को और समृद्ध करने के स्तर को तय करती हैं। मसलन 36,000 लोगों पर हुए 126 अलग-अलग अध्ययनों से पता चला है कि व्यक्ति का शैक्षिक प्रदर्शन अपनी उहापोह/दुश्चिंताओं को नियंत्रित रखने की उसकी दक्षता पर निर्भर करता है। प्रदर्शन को मापने का तरीका फिर कुछ भी हो सकता है - ग्रेड देना, कौशल अर्जन जांच या ग्रेड अंक औसत। ऐसा ही एक अध्ययन जीवन बीमा के एजेंटों पर किया गया था। इसमें पाया गया था कि जीवन के प्रति आशावादी रवैया रखने वाले सेल्स एजेंटों ने पहले दो सालों में निराशावादियों से 37 प्रतिशत ज़्यादा बिज़नेस किया। साथ ही पहले साल में निराशावादियों की नौकरी छोड़ने की दर आशावादियों से दुगुनी थी।

मनोवैज्ञानिक और शिक्षाविद् अब मानने लगे हैं कि स्कूलों में छात्रों की सफलता तथ्यों के भण्डार या पढ़ाई में विलक्षण होने पर उतनी नहीं टिकी होती जितनी भावनात्मक काबिलियत पर। भावनात्मक काबिलियत यानी खुद पर विश्वास होना और उत्साह होना; अपेक्षित व्यवहार का ज्ञान होना; उतावलेपन पर काबू पाने के तरीकों से वाकिफ होना; ज़रूरत पड़ने पर शिक्षक की ओर रुख करना; अन्य सहपाठियों से हिलमिल कर रहना। कुछ अध्ययनों के अनुसार स्कूल में पिछड़ने वाले लगभग सभी छात्रों में भावनात्मक बुद्धि का प्राय: कोई न कोई तत्व नदारद पाया गया।

इन तमाम बातों के बावजूद हमारे पाठ्यक्रम निर्माता भावनात्मक ज़रूरत को नज़रअंदाज़ कर शैक्षिक क्षमताएं बढ़ाने पर ही अटके पड़े हैं। अगर भावनात्मक बुद्धि को पाठ्यक्रम से बाहर रखने की कीमत इतनी अधिक न होती तो इस अपेक्षा पर ध्यान नहीं भी दिया जाता। लेकिन ऐसा है नहीं। मसलन भावनात्मक रूप से कमज़ोर बच्चों की बीच में ही स्कूल छोड़ने की दर अन्यों

से कहीं ज़्यादा होती है। ज़ाहिर है इसका असर 'सबके लिए शिक्षा' के हमारे लक्ष्य पर भी पड़ता है।

पश्चिमी देशों में कुछ छात्रों का स्कूल पूर्व के सालों से लेकर किशोरावस्था तक किए अध्ययन में निम्न भावनात्मक बुद्धि वाले 50 प्रतिशत छात्र बड़े होने पर आपराधिक कर्मों में लिप्त पाए गए। इस तरह के बच्चों में भावनात्मक योग्यताएं न विकसित कर हम न केवल उन्हें समाज से विमुख और यहां रहने में नाकाबिल बनाते जा रहे हैं बल्कि सुखी व सफल ज़िन्दगी के उनके अवसरों पर भी ग्रहण लगाते जा रहे हैं।

वैश्विक स्तर पर भी भावनात्मक निरक्षरता लगातार बढ़ती जा रही है। पूर्व के दशकों की तुलना में बच्चे औसत रूप में ज़्यादा व्यवहारगत समस्याओं से पीड़ित दिखते हैं; वे ज़्यादा अवसाद व दुश्चिताओं से घिरे हैं; सोचने-समझने और एकाग्रचित्त होने में उन्हें समस्या होती है तथा वे अधिक आपराधिक या आक्रमणकारी होते जा रहे हैं।

लेकिन इस अंधेरे में छोटी-सी रोशन-किरण भी है। और वह यह कि अगर यह हमारे सरोकारों की सूची में दर्ज हो जाएं और हम कमर कस लें तो भावनात्मक क्षमताएं सीखी भी जा सकती हैं और इनमें सुधार सम्भव है। सामान्यतः बच्चों का भावनात्मक आधार पुख्ता करने की अपेक्षा अभिभावकों से होती है। वैसे परिवारों को एकांकी की ओर ढकेलती सामाजिक-आर्थिक ताकतों के इस युग में इसकी सम्भावना कम ही नज़र आती है। अधिकांशतः ऐसी समस्याओं से बच्चों को खुद ही निपटना पड़ता है। बच्चों की इस अहम ज़रूरत से वाकिफ पालकों के पास भी भावनात्मक क्षमताओं को प्रोत्साहित करने व पनपाने का समय कम ही होता है। इस सबके मद्देनज़र एकमात्र विकल्प है स्कूलों का परम्परागत अधिकार क्षेत्र बढ़ाना ताकि शिक्षा को महज़ पढ़ाई-लिखाई तक सीमित न रख जीने के बुनियादी कौशलों में इसका शुमार किया जा सके।

भावनात्मक दक्षताओं के महत्व को स्वीकारने वाले स्कूलों ने इस पक्ष को अपने पाठ्यक्रम में शामिल करने के दो तरीके सुझाए हैं। पहला है, भावनात्मक बुद्धि को एक अलग विषय के बतौर पाठ्यक्रम में शामिल करना और दूसरा है पहले से पढ़ाए जा रहे विषयों में भावनात्मक योग्यताओं के अभ्यासों का छौंक लगाना। पहले से ही पाठ्यक्रम के बोझ तले दबे शिक्षकों को शायद पहला रास्ता न भाए। भारतीय परिप्रेक्ष्य में दूसरा तरीका ज़्यादा उपयुक्त लगता है चूंकि पढ़ने-लिखने, स्वास्थ्य विज्ञान, सामाजिक विज्ञान आदि से भावनाओं/संवेगों सम्बंधी बातें सहज ही जुड़ जाती हैं। मसलन भाषा या पढ़ना सिखाने की कक्षा में संवेदनशीलता, एक दूसरे का ख्याल रखना, दोस्ती और अपने विचारों की साझेदारी जैसे अन्य विषय पर समूह चर्चा हेतु कहानियां उपयुक्त शुरुआत हो सकती हैं। इसी तरह से अगर विज्ञान, छोटे-छोटे समूहों में प्रयोगों के ज़रिए कराया जा रहा है तो पहल करना, नेतृत्व, टीम के साथ काम करना, आपसी बातचीत से किसी फैसले तक पहुंचना और आत्मविश्वास जैसी भावनात्मक बुद्धि से जुड़ी बातें विज्ञान शिक्षण में शामिल की जा सकती हैं।

भावनात्मक दक्षताओं के महत्व को स्वीकारने वाले स्कूलों ने इस पक्ष को अपने पाठ्यक्रम में शामिल करने के दो तरीके सुझाए हैं। पहला है, भावनात्मक बुद्धि को एक अलग विषय के बतौर पाठ्यक्रम में शामिल करना और दूसरा है पहले से पढ़ाए जा रहे विषयों में भावनात्मक योग्यताओं के अभ्यासों का छौंक लगाना।

इससे विज्ञान शिक्षण का भी भला ही होगा।

दरअसल भावनात्मक और सामाजिक कौशलों को स्कूली जीवन के सूत के संग ही काता जा सकता है। मसलन शिक्षकों को चाहिए कि छात्रों के गैर अनुशासनात्मक व्यवहार पर उन्हें डांटने-फटकारने की बजाए ऐसे मौकों का इस्तेमाल उनमें नदारद भावनात्मक कौशलों को सिखाने में किया जा सकता है। मसलन क्षणिक आवेगों, उतावलेपन पर नियंत्रण, अपनी भावनाओं को बिना तैश में आए अभिव्यक्त करना और असहमति की स्थिति में समाधान तक पहुंचने की दक्षता, ज़बरदस्ती करने की तुलना में अनुशासित करने का बेहतर तरीका है। मान लो एक कुर्सी पर बैठने के पीछे दो छात्रों की लड़ाई का निपटारा बहस-मुबाहिसे की जगह

सिक्का उछाल कर भी हो सकता है। इस छोटे से प्रकरण के ज़रिए जीवन की एक बहुत अहम सीख उन तक पहुंचाई जा सकती है - लड़ाई झगड़ों का निष्पक्ष निपटारा भी सम्भव है।

लेकिन स्कूली पाठ्यक्रम में भावनात्मक सीख का समावेश क्या एक बड़ा बदलाव ला सकेगा! इसका जवाब पूरी तरह से इस सीख को देने के तरीके पर निर्भर करेगा। पहला तो यह कि मेरे ख्याल से यही एकमात्र ऐसा विषय है जिसमें शिक्षक की गुणवत्ता अहमियत रखती है। शिक्षकों का बच्चों से सम्बंध और व्यवहार भावनात्मक पाठों के सिद्धान्तों में गोते लगाने की बजाए इनके प्रभाव को कई गुना बढ़ा सकता है। शिक्षक की एक बच्चे से बातचीत बाकी की पूरी कक्षा के लिए एक सीख होती है। और दूसरा यह कि शिक्षकों को शिक्षा के इस पहलू को लेकर संवेदनशील बनाए जाने की ज़रूरत है। लेकिन वस्तुस्थिति यह है कि मौजूदा शिक्षक न तो नौकरी पूर्व और न ही नौकरी के दौरान प्रशिक्षण में ऐसा उन्मुखीकरण पाते हैं। कहना न होगा कि सामाजिकीकरण की इस प्रक्रिया को लेकर अगर हम सचमुच गम्भीर हैं तो यह उन्मुखीकरण बेहद ज़रूरी है। यह अहमियत इसलिए भी नज़र आती है क्योंकि हमारी ही तरह शिक्षक भी भावनाओं के बारे में बात करने में असहज होते हैं। बच्चों को उनके अपने बारे में शिक्षित करने की बात तो छोड़िए।

जब बात भावनात्मक सीख की हो तो इसके कम से कम कुछ घटक तो मूल्य प्रधान और संस्कृति विशिष्ट होंगे ही। इसलिए भावनात्मक बुद्धि के पाठ्यक्रम का देशज होना अनिवार्य है। पश्चिम में रोपे पाठ्यक्रमों की जड़ें हमारी ज़मीन में जमवाने की कोशिश मूर्खता होगी। हमें इस बात से भी आगाह रहना होगा कि भावनात्मक बुद्धि के चोले में लुक-छिप कर कहीं किन्हीं गलत मूल्यों की तो तस्करी नहीं की जा रही है।

उल्लेखनीय है कि जिन स्कूलों में सोचे-समझे तरीके से भावनात्मक बुद्धि को स्कूली पाठ्यक्रम में शामिल किया गया है, और इस हेतु शिक्षकों को पर्याप्त प्रशिक्षित व प्रेरित किया गया है वहां नतीजे काफी उत्साहवर्धक रहे हैं। इन प्रयासों का आकलन छात्रों के भावनात्मक कौशलों में व्यापक सुधार की ओर इशारा करते हैं। इसके अलावा उनके सामान्य व्यवहार और सीखने की क्षमता में भी सुधार दिखता है। बच्चों की शैक्षिक उपलब्धियां और स्कूली प्रदर्शन खास तौर पर बेहतर होती नज़र आई हैं। यानी भावनात्मक बुद्धि छात्रों को न केवल बेहतर सिखिया बनाती है बल्कि इससे भी एक कदम आगे बढ़कर उन्हें बेहतर इंसान भी बनाती है व स्कूल की पढ़ाने की क्षमता में और सुधार लाती है।

यह दुखद है (लेकिन आश्चर्यजनक नहीं) कि इस देश के पाठ्यक्रम निर्माताओं ने आज तक स्कूली पाठ्यक्रम में भावनात्मक आयाम को जोड़ने की कोई खास पहल नहीं की। वैसे संकेत मिल रहे हैं कि अवधारणा व ज़रूरत के बतौर भावनात्मक बुद्धि अंततः नीति निर्माताओं के बीच वैधानिक पैठ बनाने में सफल हो रही है। इसका कुछ-कुछ अंदाज़ एन.सी.ई.आर.टी. के पिछले साल के दस्तावेज़ 'स्कूली शिक्षा हेतु राष्ट्रीय पाठ्यक्रम का ढांचा' से लगाया जा सकता है। इस दस्तावेज़ में भावनात्मक बुद्धि का शुमार 'पाठ्यक्रम सरोकार और मुद्दे' के बतौर किया गया है। लेकिन पाठ्यक्रम सरोकारों और विषयों में भावनात्मक बुद्धि का कर्त्तव्यनिष्ठ ज़िक्र करने के बाद और शिक्षा के सामान्य उद्देश्यों में इसका हलका-सा संदर्भ देने के बाद एन.सी.ई.आर.टी. शेष दस्तावेज़ से इसे गायब कर देती है। भावनात्मक साक्षरता के विभिन्न पहलू न तो विस्तृत पाठ्यक्रम में जगह पाते हैं और न ही नियुक्ति पूर्व या नौकरी के दौरान प्रशिक्षण में इनको तवज्जो दी गई है।

इस सब के मद्देनज़र यह डर गैर वाजिब नहीं कि हमारे स्कूल कम से कम कुछ और वक्त तो सही मायने में शिक्षा प्रदाता की बजाए प्रशिक्षण और उपदेश देने के सरकारी मोहरे बने रहेंगे। यकीनन यह हम सब के लिए एक चिन्ताजनक और विचारणीय मसला है।

(स्रोत फीचर्स)

★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★